अध्याय षष्टम

अनामिका के काव्य की सृजन समीक्षा

संवेदनात्मक चित्रण-

संवेदना प्रत्यक्ष-अनुभवों को संशोधित रूप होता हैं। जिस तरह अनुभव आधारहीन नहीं होते, उसी प्रकार संवेदना भी आधारहीन नहीं होती। संवेदना के मूल में कुछ तथ्य विद्यमान रहते है जो 'वास्तविकता' में 'मानवीय' तत्वों से भरे होते है। यह एक स्थिति विशेष है, जिससे हर मनुष्य और हर कलाकार प्रभावित होता है। संवेदना का वास्तविक रूप देखने मात्र से उपस्थित नहीं होता। अनामिका के बारे में जब संवेदना की बात उठती है तो कभी ऐसा नहीं लगता कि उनकी संवेदना प्रेमचंद, यशपाल या किसी भी प्रगतिशील से प्रगतिशील अथवा जाने माने लेखक से उन्नीस है। लेखक का मुख्य आधार अगर कोई है तो संवेदना है। संवेदना ही सबसे बड़ा उदाहरण है जिससे हम कहीं भी और कभी भी मानवीय पहलूओं का अध्ययन कर सकते है। अनामिका ने शायद ही ऐसा कोई पहलू छोड़ा हो जो नारी समाज से सम्बन्धित न हो। 'संवेदना' शब्द सुनने में भले ही छोटा लगता हो लेकिन इसका अर्थ गम्भीर है। संवेदना अन्त:करण में उठने वाली तरंगों का विशेष रूप है। साहित्य का सृजन बिना संवेदना के करना बहुत कठिन है। संवेदनशीलता मनुष्य का प्रमुख अंग है और साहित्य सृजन का मुख्य रूप है। ''कविता मूलत: युग संदर्भों की देन होती है। उनमें अतीत के चित्रण और भविष्य के संकेत भी युग संदर्भ से जुड़कर ही आते है।"[1]

इसलिए यह कहना उचित होगा कि प्रत्येक रचना साहित्य में युग संदर्भों के साथ समय के अनुकूल या समकालीन होती है। विश्व पट पर भारतीय जीवन की छवि बहुत ही उत्कृष्ट है। भारतीय जीवन मूल्यों में संवेदना का अपना पृथक स्थान है। ''संवेदना की जागृति के लिए कारण कुछ भी हो सकता है- स्पर्श, दृश्य, श्रव्य, गन्ध, भाव, विचार या कल्पना। ध्वनि संवेदना, वायु संवेदना, प्रकाश संवेदना, जल संवेदना, रंग संवेदना, वर्ण संवेदना, शारीरिक संवेदना, आर्थिक संवेदना, राजनीतिक संवेदना, वैज्ञानिक संवेदना, धार्मिक संवेदना, आध्यात्मिक संवेदना, घृणा संवेदना

अर्थात् जीवन का प्रत्येक अंग प्रत्यंग रंग और प्रत्येक कण, प्रत्येक क्षण संवेदनामय होता है। सुख-दुख, अश्रु-हास्य, करुणा, कृतज्ञता, कृतध्नता, संकुचन-विस्तार, श्राप-आशीर्वाद, श्रृंगार सभी कुछ संवेदना का परिणाम हैं, प्रत्येक भाव, प्रत्येक कल्पना, प्रत्येक स्वप्न और प्रत्येक यथार्थ का सीधा सम्बन्ध और सम्पर्क संवेदना से हैं, कोई प्राणी, कोई जीव या कोई जीवन संवेदनाहीन नहीं होता, पत्तों का हिलना, पक्षियों का कलरव, बड़ों की सिसकारी, नेताओं की नेतागिरी, कलाकारों की आह, दर्शकों या पाठकों की वाह, पुजारियों की आरती, प्रेमियों की शरारत, साधुओं के कीर्तन, गीतों का आलाप और भिक्षुओं का प्रलाप, कहाँ नहीं है संवेदना? बस, अनुभूति और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य हो।"[2]

1. सामाजिक संवेदना -

वर्तमान परिवेश में व्यक्तिवाद, अजनबीवाद, सामाजिक, धार्मिक असहिष्णुता ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। यही कारण है कि आज का सामाजिक परिवेश पूर्व के सामाजिक परिवेश से बहुत पृथक रूप से देखने को मिलता है। मनुष्य अपने स्वभाव से ही संवेदनशील प्राणी है। साहित्यकार या रचनाकार सामान्य स्तरीय व्यक्ति से अधिक अनुभवी और संवेदनशील होता है। रचनाकार जिस परिवेश में रहता है, उस परिवेश की तमाम परिस्थतियों का प्रभाव उसके मानस पर पड़ता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी प्रकार की परिस्थितियाँ रचनाकार के मानसिक जगत में प्रवेशकर, अभिव्यक्ति का मार्ग खोजती है। अवसर आने पर रचनाकार अपनी प्रतिभा के सहयोग से, शब्दों को साहित्यिक विधा का रूप प्रदान करता हैं। इस प्रक्रिया में, मनुष्य-मन में परस्पर विरोधी, परस्पर सहयोगी प्रकार की प्रतिक्रियाएं जन्म लेती रहती है। मनुष्य-मस्तिष्क नाना प्रकार की मानसिक गतिविधियों का केन्द्र बन जाता है, जिसमें दु:ख-सुख जनित अनुभूतियाँ भी संचित रहती है। ये अनुभूतियाँ रचनाकार के हृदय की सीमाओं को तोड़कर फैल जाना चाहती है। ऐसा होने पर साहित्य की सृष्टि होती है।संवेदना भाव, अनुभव और अनुभूति जैसे तत्वों की सहायता से जन्म लेती है। मूलत: संवेदना को मानव मन से जोड़ा जाता है। किसी वस्तु को देखकर मन में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है जो संवेदना को जन्म देती है।

उत्तेजना मन के अन्दर से भी उत्पन्न होती है और बाहर से भी। संवेदना का अभिप्राय अभाव की स्थिति या वेदना की निवृत्ति से न लेकर, साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा से लेना चाहिए, जो सृजन की प्रेरणा, निर्माण की शक्ति, रचना विधान की क्षमता और लोकजीवन के प्रति आस्थावान बनाती हैं। कोई भी मानव, चाहे वह साधारण हो या असाधारण सदैव परिवेश से सम्पृक्त रहता हैं। लेखक कभी परिवेश की उपेक्षा नहीं कर सकता। कोई भी साहित्यकार समाज, समय एवं परिवेश से प्रभावित हुए बिना कुछ भी अभिव्यक्त नहीं कर सकता। परिवेशजन्य परिस्थितियाँ साहित्यकार की संवेदनशीलता का अंग बनकर साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं। जब रचनाकार परिवेश की साँस-साँस और धड़कन-धड़कन को अपने भीतर स्पंदित-आन्दोलित महसूस करता हैं, तभी उसके अनुभव सटीक और ईमानदार होते है।

स्त्री ईश्वर की एक ऐसी अद्भुत रचना है जिसके भीतर दया, ममता, सहानुभूति, प्रेम त्याग, संवेदना, करुणा, कोमलता, नाजुकता आदि गुण भरे पड़े हैं। किन्तु पुरुष अपने अत्याचारों और अभद्र व्यवहार से उसी कोमलांगना को कठोर बनने के लिए विवश करता है। स्त्री के अनेक रूप हमारे सामने आये और धुंधले होते चले गये। स्त्री माँ, बहन, बेटी और पत्नी के रूप में सदा ही पुरुष के साथ रहती हैं। स्त्री का कोई भी रूप हमारे सामने आया हो किन्तु पुरुष ने उसे केवल छलने का कार्य ही किया है। कोई भी काल रहा हो स्त्री छल से बच नहीं सकी है। साहित्य का संबंध संवेदना से होता है। इसलिए संवेदनाहीन साहित्य का कोई मूल्य नहीं होता है। साहित्य की बड़ी उपयोगिता या सार्थकता इस बात से मानी जाती है कि यह हमारी संवेदना का विस्तार करती है। संवेदना तो जीव-जंतु की मजबूरी है।

हिन्दी साहित्य कोश में संवेदना को परिभाषित करते हुए कहा गया है- ‘‘साधारणत: संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मूलत: वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेंद्रियों का अनुभव हैं। मनोविज्ञान में इसका यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसकी संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह-रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रक्रिया है, जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है।"[3]

नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार- “मन में होने वाले बोध या अनुभव अनुभूत और किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दुख सहानुभूति।"[4] संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के अनुसार- “संवेदना अर्थात् सम-वेदना के द्योतक है।"[5]

संवेदनहीन व्यक्ति साहित्य का सृजन कर ही नहीं सकता। मनुष्य अपनी भावात्मक संपन्नता के कारण संवेदनशील होता है। संवेदनशीलता के कारण कवि, कथाकार, कलाकार अपने समकालीन समाज में रहकर नाना प्रकार के अनुभव करता रहता है। रचनाकार के अनुभव और संवेदनशीलता मिलकर अविभाज्य रूप में परस्पर गुंफित रहते है। संवेदना के स्तर पर लेखक, कलाकार इन अनुभवों को विभिन्न माध्यमों से व्यक्त करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त का विचार है कि- 'साहित्यकार चाहे किसी भी पात्र की भावनाओं एवं अनुभूतियों का चित्रण और अभिव्यंजन करें, उसके निजी व्यक्तित्व की छाप उस पर विद्यमान रहती ही हैं। इतना ही नहीं वह जिन भावनाओं को साहित्य में प्रमुखता देता है वे वस्तुतः उसके व्यक्तित्व एवं जीवन की प्रमुख भावनाएं होती हैं।'[6] संवेदना साहित्य सृजन का अनिवार्य अंग होती है। 'संवेदना' विशेष प्रकार का अनुभव विशेष है जो व्यक्ति में घुलते हुए, अनुभूति के रूप में छनकर आते हैं। डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित संवेदना सम्बन्धी विचार विमर्श के विषय में कहते है- 'संवेदना उत्तेजना के सम्बन्ध में देह रचना की सर्वप्रथम संचेतन प्रतिक्रिया होती है। इससे हम वातावरण के माध्यम से ज्ञानोपलब्धि करते हैं। संवेदना हमारे मन की चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है जिसमें हमें विश्व की वस्तु विशेष का बोध न होकर, उसके गुणों का बोध होता हैं।[7]

'अज्ञेय' संवेदना के विषय में लिखते है- 'संवेदना वह यंत्र विशेष है जिसके सहारे जीवसृष्टि अपने से इतर, सब कुछ करने के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ती है। यह सम्बन्ध एकता का भी होता है और भिन्नता का भी। इसी का सहारा लेकर जीवसृष्टि अपने से इतर जगत् की पहचान करती है, वहीं उससे अपने को अलग भी करती है।[8] साहित्यशास्त्रियों के मतों पर विचार करने के बाद निष्कर्ष निकलता है कि संवेदना के संदर्भ में अन्य विषयों के साथ कवि का अपना व्यक्तितत्व, उसका अनुभव संसार, उसके संस्कार, सामाजिक तथा सांस्कृतिक धरोहर से प्राप्त अनुभव आदि

शामिल रहते हैं। सभी संवेदनशील व्यक्ति लेखक या कवि नहीं हो सकते। लेखन कार्य से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति संवेदनशील होना ही चाहिए। अनामिका की चीख कविता में संवेदनशीलता को देखें-

"ये किसकी चीख की तरह पसरे है जंगल?

एक चीख मेरे भी भीतर दबी है

उसका बस चले अगर तो

मेरी पसलियाँ तोड़ती

निकल आए बाहर

ये चीख मेरी

आदिवासी रूपसी की तरह

अब तक मिले थे तहखाने में

टहल रही है बेबस।

जंजीरें छूम छनन उसके पैरों की

जिस दिन भी टूटेगी-देखना-

बिन घुँघरू नाच उठेगा जंगल।"[9]

डॉ. वी. एस माथुर के अनुसार 'संवेदना मूलत: ज्ञानेन्द्रियों की प्रतिक्रिया हैं जो उत्तेजित होने पर मस्तिष्क और उसके द्‌वारा संचालित नाड़ी-मंडल के केन्द्र में स्नायु-युक्त धाराएं भेजती हैं। इस प्रकार मस्तिष्क का प्रथम प्रत्युत्तर ही संवेदना है।'[10] इसी क्रम में डॉ. एस0 एन0 शर्मा का मत जानना होगा। वे मानते है कि 'सामान्य तौर पर जब हम संवेदना की चर्चा करते है तो हमारा मन उद्दीपकों की ओर जाता है। हमें उन सम्बन्धों की जानकारी होती है जो व्यक्ति के अनुभवों में विभिन्न उत्तेजकों के रूप में संग्राहकों तक पहुँचते हैं।'[11] आधुनिक और उत्तर आधुनिक काल

में अनेक विमर्श उभर कर सामने आये। इन विमर्शों में प्रमुख रूप से आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, स्त्री चेतना आदि प्रमुख है। संवेदना में स्त्री विमर्श को अनामिका ने स्थान दिया है। स्त्री विमर्श के सामाजिक स्थिति पर उनका कहना है।

"और जब सुलगता है दावानल

आग की तरंग पर सवार

पूछती है जंगल के ठेकेदारों से

सीलन पलटकर कि कैसे हो

जो वे देते है जवाब, उसे सुनती है रुककर

फिर कहती है-"अच्छा भूलो सब,

अब साथ चलो।"[12]

आज की स्त्री जागरुक हो चुकी है, शिक्षित हो रही है, स्वावलम्बी बन रही है, वह अपने स्व एवं अस्मिता की तलाश में हैं। वह अनंत की जिजीविषा को उजागर करने का सफल प्रयास किया है- "आज स्त्री ने स्त्री के व्यक्तित्व को नवीन परिप्रेक्ष्य में उभारने का प्रयास किया है। यही प्रयत्न स्त्री विमर्श की नवीन दृष्टि का प्रोत्साहन होता है, साथ ही स्त्री विमर्श के विकास की नवीन सम्भावनाओं का एवं भविष्य का भी संकेत कराता है।"[13]आज की अधिकांश स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी विचारशील होने का दावा करती हुई स्त्री-समाज, स्त्री-स्वतंत्र्य, स्त्री समानता और अधिकारों की लड़ाई लड़ते हुए भी नहीं जानती कि वे अधिकार वस्तुत: क्या है, कैसे होने चाहिए, किस रूप में होने चाहिए। स्त्रियों को शिक्षित किए बिना उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना सम्भव नहीं, स्त्रियों को जागृत और सचेत बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

"जगह? जगह क्या होती है?

यह, वैसे जान लिया था हमने

अपनी पहली कक्षा में ही

याद था हमें एक-एक अक्षर

आरम्भिक पाठों का

राम पाठशाला जा

राधा खाना पका

राम, आ बताशा खा

राधा झाड़ू लगा

भैया अब सोएगा,

जाकर बिस्तर बिछा

अहा नया घर है

राम, देख यह तेरा कमरा है।

और मेरा

ओ पगली,

लड़कियाँ हवा, धूप मिट्टी होती हैं

उनका कोई घर नहीं होता।"[14]

आधुनिक काल की स्त्री लेखिकाओं में अनामिका का एक विशिष्ट स्थान है। अनामिका ने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में सृजन कर अपनी सृजनधर्मिता का बखूबी निर्वहन किया है। स्त्री विमर्श के स्वरूप पर अनामिका ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि- "शुरूआती दौर में यह स्त्री पुरुष सम्बंधों, स्त्री की आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक समस्याओं तथा समाज के उपेक्षित वर्गों की

समस्याओं तक ही सीमित था, मूलत: स्त्री केन्द्रित ही था, लेकिन अब इसकी दृष्टि व्यापक हो गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर जितनी भी घटनाएँ घट रही है, उन सबकी चिन्ता भी इसके केन्द्र में हैं। सम्बन्धों में संवेदना का ह्रास और उसके कारण विघटन की जो स्थिति बनी है, इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है और स्त्री विमर्श उसी का निवारण मनोवैज्ञानिक तरीके से चाहता है। हिंसा का बदला हिंसा से नहीं लिया जा सकता। मनुष्य स्वभाव से इतना क्रूर और हिंसक जो हो गया, बचपन से मन में पड़ी किसी कुंठा का ही परिणाम है। स्त्री विमर्श मानव के मन में आशा का संचार करना चाहता है। फिर से मानवीय मूल्यों से संपृक्त करना चाहता हैं। आशावादिता इसका मूलमन्त्र है।"[15]

"सारे संदर्भों के पार

मुश्किल से उड़कर पहुँची हूँ,

ऐसे ही समझी पढ़ी जाऊँ

जैसे

अधूरा अभंग।"[16]

वास्तव में नारी समाज का आधा हिस्सा और समाज की उन्नति-अवनति का मापदंड हैं। वह साहित्य, संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग हैं। "वह उच्च मानवीय गुणों और आदर्शों का अजस्र स्रोत हैं। वह पुरुष की प्रेरणा, साथी, मार्गदर्शक, संरक्षक हैं। उसके बिना सृष्टि, सभ्यता, संस्कृति और पुरुष के जीवन में वह स्थान नहीं दिया जाता, जिसकी वह हकदार हैं। पुरुष प्रधान सनातनी समाज व्यवस्था नारी को सदैव उसके अधिकारों से वंचित रखकर उसे मात्र भोग का साधन बनाती हैं।"[17] जो वर्तमान सन्दर्भों में उचित मापदण्ड नहीं हैं। आज भारत वर्ष में नारी को भोगवादी वस्तु के रूप में देखना सामाजिक बदलाव की ओर इंगित करता है। स्त्री विमर्श में अनामिका उनकी उपलब्धियों के बारे में प्रकाश डालते हुए कहती है कि- "स्त्री विमर्श की सबसे बड़ी उपलब्धि ही यही है कि अपनी खुद की चेतना जागी है। हर वर्ग, धर्म जाति के लोगों में एक नयी चेतना जाग्रत हुई हैं। यहाँ तक की सड़क पर रहने वाली स्त्री भी

अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठी हैं।"[18] घर और परिवार में स्त्री पर अत्याचार होता ही रहता है। अत्याचार के प्रति विद्रोह के स्वर हमें अनामिका की कविताओं में मिलते हैं, जहाँ स्त्री प्रश्न कर रही है-

"शायद यह घर मेरा है,

किसका है ये ज़लज़ला?

X X X

ये मालिक क्या होता है?

क्या होता है किसी का होना?

X X X

बहुत प्यार करता है जो मुझको

किसका है?

किसकी है तनी हुई भौंहें

और किसका है

यह मुझ पर लहराता चाबुक है?"[19]

पारिवारिक घुटन और संत्रास से व्यथित मन घर की जड़ चीजों में भी आत्मीयता खोजकर प्रश्न करने लगता है। अनामिका की 'फर्नीचर' कविता स्त्री के इन्हीं सवालों को वाणी देती है, जिसमें फर्नीचर से प्रश्न पूछती है स्त्री-

"मैं उनको रोज झाड़ती हूँ

पर वे ही है इस पूरे घर में

जो मुझको कभी नहीं झाड़ते।"[20]

लेकिन मन में व्याप्त भय उनकी पंक्तियों में यूँ व्यक्त होता है-

'जब आदमी ये हो जाएगें,

मेरा रिश्ता इनसे हो जायेगा क्या

वो ही वाला

जो धूल से झाड़न का?"[21]

जब परिवार में स्त्री का दर्जा दोयम हो, घर और बच्चों की देखभाल तक उसकी जिम्मेदारी सीमित हो, उसका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व न विकसित हो सकता हो, तब वह परिवार में उपस्थित होकर भी स्वयं को अनुपस्थित समझने लगती हैं। ऐसी ही अभिव्यक्तिपरक अनामिका की एक कविता और देखें-

''लोग दूर जा रहे हैं

हर कोई किसी से दूर

लोग दूर जा रहे हैं

और बढ़ रहा है

मेरे आस-पास का स्पेस।"[22]

स्त्री विमर्श पर मंजु रुस्तगी ने कहा है कि- ''स्त्री विमर्श और कुछ नहीं आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकार की पहल का दूसरा नाम है। स्त्री विमर्श वस्तुत: स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद की संकल्पना है। फिर भी बीसवीं शती के अन्तिम दो दशक में इस विचारधारा को पनपने का उपयुक्त परिवेश मिला।"[23]

भारतीय समाज में घरेलू हिंसा प्राय: अनाचार के रूप में सार्वभौमिक रूप से विद्‌यमान है। ''उत्पीड़न, प्रताड़नाओं और अवहेलनाओं के कटीलें तारों से बींधता स्त्री जीवन का यह अध्याय तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक शोषणकर्ता अपनी संवेदनहीनता को त्याग न दे। इसका सीधा सा रास्ता ही महिलाओं पर चोट करना हैं ऐसा नहीं की सभी पुरुष शोषणकर्ता हैं क्योंकि अगर ऐसा होता तो उच्च पदों पर आसीन महिलायें नहीं होती। क्या विश्व का कोई भी पुरुष पूर्ण विश्वास से यह कह

सकता है कि स्त्री के ममत्व और स्नेह के बिना अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया।"[24] घरेलू हिंसा आज घर घर की कहानी हैं। परिवार में खटर-पटर होती ही रहती है। भारतीय समाज में विवाह को एक संस्कार के साथ जोड़ा गया है, इसलिए उसमें विसंगतियाँ भी है। विवाह सम्बन्धों में स्त्री की दयनीय स्थित का वर्णन करते हुए अनामिका लिखती है-

''पीठ नीली

चेहरा पीला

लाल आँखें और

जख्म हरे

कुदरत के सब रंगों की बोतल

उलट-पलट जाती है मुझ पर

उनके आते ही!"[25]

एक अजीब से विरोधाभास में जीती हैं स्त्रियाँ। अनामिका की कविताओं में भारतीय परिवारों में स्त्री के दुखद स्वरूप को उद्घाटित करती हैं-

''घर में घुसते ही

जोर से दहाड़ते थे मालिक और

एक ही डाँट पर

एकदम पट्ट

लेट जाती थी वे

दम साध कर।"[26]

एक और अन्य कविता में भी इसी प्रकार की स्थिति का वर्णन हुआ है-

"हाँ, तुम्हारा पिन-कुशन हूँ-

हर नुकीली बात तुम मेरे हृदय में घोंपकर

फ़ासलों की फाइलें बढ़ाते हुए।"[27]

स्त्री परिवार के लिए समर्पित रहती है। पत्नी और माँ के बीच वह अपने कर्त्तव्यों का वहन करते हुए अपनी इच्छाओं का दमन कर देती हैं। अनामिका ने स्त्री की बैचेनी को व्यक्त करते हुए लिखा है-

"एक दिन पुच्छल तारे की बैचेनी में

सिर धुनकर

बृहस्पति से टकराने से पहले

मैंने सोचा-

मेरे पीछे इतने बड़े कुनबे का

आखिर क्या होगा?

यह सोचकर मैंने टक्कर स्थगित की,

और मन बदलने की खातिर

घर की छोटी-मोटी चीजों के बारे में

सोचने लगी।"[28]

अनामिका स्त्री के दुख या अवसाद को भी साझा करने की क्षमता रखती है। स्त्री शक्तिस्वरूपा है। यह क्षमता इस कविता में देखें -

"वह बिल्कुल अनजान थी

थकी दिखती थी वह,

फिर भी वह हँसी।

उस हँसी का न तर्क था, न व्याकरण,

न सूत्र, न अभिप्राय

उसने फिर हाथ भी बढ़ाया,

और मेरी शॉल का सिरा उठाकर

उसके सूत किये सीधे

उसके उन झुके हुए कन्धों से

मेरे भन्नाए हुए सिर का

बेहद पुराना है बहनापा!"[29]

समाज में अपनी 'जगह' की खोज और समाज द्वारा परिष्करण की प्रक्रिया- इसी द्वन्द्व में स्त्री का अन्तर्जगत से उसका सम्बन्ध भी परिभाषित होता है। 'बेजगह' कविता में अनामिका कहती है-

"अपनी जगह से गिरकर

कहीं के नहीं रहते

केश, औरतें और नाखून।"[30]

स्त्री मन की पीड़ा के साथ-साथ उनके मन में उठने वाले सवालों से भी अनामिका अनजान नहीं है, वह जानती है तभी तो कहती है-

"सिर पर जितने बाल,

उससे कुछ ज्यादा सवाल।"[31]

अनामिका मानती है कि स्त्री की शारीरिक संरचना उसे समाज में शोषितों की श्रेणी में खड़ा कर देती हैं। सामाजिक ताने बाने में स्त्री की असुरक्षा को अनामिका ने अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखा है-

"बेथलेहम और यरूज़लम के बीच

कठिन सफर में उनके

हो जाते कई बलात्कार।"[32]

अनामिका के काव्य में स्त्री की संवेदना के जो रूप व्यक्त हुआ है उससे ज्ञात होता है कि आज की नारी आधुनिकता के नाम पर भी रूढ़िवादी विचार धारा से घिरी हुई है।

2. पर्यावरणीय संवेदना-

पर्यावरण और मानव एक दूसरे के पूरक हैं। मानव अपने विकास के क्रम में प्रकृति का सानिध्य अवश्य प्राप्त करता है। मानव अपना तथा अपने परिवार का विकास इसी के सानिध्य से प्राप्त करता है। पर्यावरण एक स्वनियंत्रित तंत्र है। वातावरण में अगर छोटे-मोटे परिवर्तन होते है तो प्रकृति इसे स्वयं संतुलित कर लेती है। साहित्य भी पर्यावरण का ही एक हिस्सा है। मनुष्य के मूक शब्दों को ध्वनि प्रदान करने में पर्यावरण का अभूतपूर्ण योगदान है। नदियों की कल-कल, चिड़िया की चीं...........चीं. पत्तों की सर-सर करना ध्वनि से ही पहचाना जाता है। ध्वनि पर्यावरण का हिस्सा है। पक्षी का कलवर पर्यावरण की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति ही है। अनामिका ने 'चिट्टी' कविता के माध्यम से इस अभिव्यक्ति को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

"चिट्टी नहीं आती-

पिजन होल खाली है

कबूतर नये घर

बनाते होगें

फूलती उन झाड़ियों में।"[33]

वातावरण में व्याप्त हवा के संकेत से स्वर लहरियाँ बनती है और सम्पूर्ण सृष्टि गुंजायमान हो जाती है। जब रचनाकार अपने परिवेश और जीवन संघर्ष से प्राप्त अनुभवों के विविध रेशों को गहरी भाव-संवेदना और बौद्धिक समझ के साथ अपनी रचनात्मक शैली से शब्द संसार का सृजन करता है तब रचना अपने समय का सही साक्ष्य बन जाती है और रचनाकार हमें उससे दो चार होता उलझता-जूझता स्पष्ट रूप से नजर आता हैं। अनामिका की रचनाएं भी समाज में उत्पन्न विभिन्न परिस्थितियों से गुजरती हुई प्रतीत होती है। समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, रीति-रिवाज, अन-बन, औद्यौगिकीकरण महानगरीय वातावरण, ने आज जीवन में कुण्ठा और निराशा उत्पन्न की हैं। आज के वातावरण में भाई-भाई के साथ सुख दुख में खड़ा नहीं होता। प्रेम भी स्वार्थ की चादर ओढ़े हुए होता है। पत्नी को घर के सुख से ज्यादा पति की आय पसन्द आती है। बच्चों के लिए माँ-बाप का प्यार केवल दौलत का व्यापार बनता नजर आ रहा हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में भी मानव अगर पर्यावरण के प्रति सजग नजर आता है तो निश्चित ही वह प्रशंसा का पात्र है। जीवन में नैतिक मूल्यों का जो ह्रास होना प्रारम्भ हुआ है उसने मानव मन को विचलित कर रखा है। आज की जो परिस्थितियाँ है उसमें मनुष्य को अपने शरीर की चिन्ता नहीं रही तो वातावरण की चिन्ता कौन करें? और क्यों करे? सड़क की सफाई, गली की सफाई सब सरकार का काम हैं मेरा काम तो केवल उसका उपयोग करना भर है। इसी मानसिकता ने ही आज महानगरों को कचरा घर बनाकर रख दिया है और इससे अधिक कुछ नहीं। प्रकृति हमारे लिए उपयोगी है। वह शुद्ध आनन्द का अनुभव कराती है। इसीलिए जीवन तथा साहित्य दोनों में ही उसका महत्वपूर्ण स्थान है। वह कला और साहित्य की मूल प्रेरणाओं में से एक अत्यन्त बलवती प्रेरणा है। अनामिका ने प्रकृति के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए लिखा है-

"अम्बर को मलेरिया हो गया है शायद।

एक पर एक

बदली की झीनी चादरें

ओढ़े चला जाता है,

फिर भी ठिठुरन नहीं जाती उसकी

और अभिव्यक्त होती वह

हवा में तिरती।

उसकी दाँतों? की किरकिराहट।"[34]

'नभ को जुकाम' नाम कविता में अनामिका आसमान को संबोधित करते हुए कहती है-

"उफ! नभ को हो गया है जुकाम

छींकता सा है

और पड़े नाक पर

मेह के रूमाल से

चूती है पानी की बूँदें।"[35]

आज के बढ़ते औद्योगिकीकरण और बढ़ते महानगरीय रूप ने प्रकृति के अनुपम रूप को छिन्न भिन्न कर दिया हैं, जंगलों का कटना, उपजाऊ जमीन पर मकानों का निर्माण, बे मौसम बरसात, आँधी तूफान आदि कारणों से कवि मन उद्वेलित हैं। 'सुबह नामक कविता में अनामिका ने सर्द सुबह के प्रति अपनी संवेदना चित्रित करते हुए लिखा है-

"सर्द पड़ जाती

अलाव के पास

ऊँघ रहे बच्चे की सुबह

धीरे-धीरे आँखें खोलती

धरती की अधखुली किताब पर

कोहरे की जिल्द उसकी फट गई हो।"[36]

शक्ति के समीकरण उसी तरह बनते एवं बिगड़ते रहे जैसे बालू के मैदान में हवा के झोकों से विभिन्न आकृतियां बनती और बिगड़ती रहती हैं। साहित्यकार अपने युग की उपज होता है। उसके युग की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती है। वह जिस वातावरण में रहता है, उसका प्रभाव उसके दृष्टिकोण तथा जीवन दर्शन पर पड़ता है।

"दूर उड़ी चिड़िया सा अनबूझ जाने क्या

घोसलें बिलखते से कहते है फिर भी-

इन बासी सुबहों से अलग कहीं एक सुबह

जंगली गुलाब सी अचानक ही

उग जायेगी जब भी झाड़ियों के पार,

सूरज का खोंमचा सभी को तब

सौपेंगा ठोगें भरकर किरणें।"[37]

प्रकृति में बसन्त ऋतु का आगमन बड़ा ही रमणीय होता है। आई बसन्त की पांचे सड़ी डुकरिया नाचे। कहावत इस बात का प्रतीक है कि बसन्त के आते ही सभी मानव जाति झूम उठती हैं। अनामिका ने आलि आयी बसन्त ऋतु की बहार कविता के माध्यम से अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए कहा है-

"आलि आयी बसन्त ऋतु की बहार,

आलि, कूकत कोयल, बार-बार,

झूम-झूमकर नाचन लागी,

हरियाई सब बेलरियाँ।"[38]

अनामिका रोशनी की अन्वेषिका है। वह आकुल, व्याकुल, मानवता, नारी के प्रश्नों के उत्तर खोजना चाहती हैं और खोजती हुए नजर भी आती है। क्योंकि उनकी अन्त:चेतना में पीड़ा का गहरा दंश है वह नारी की लिखो को कातरता और वेबसी को मानवीय स्नेह के स्वरों में डूबोकर प्रकृति के संरक्षण के लिए एक आशावादी मशाल जलाने की चेष्टा करती हैं। दोपहर कविता में अनामिका का यह भाव देखें -

''धूप का गुस्सा
दिनों-दिन बढ़ रहा है-
चिड़चिड़ी सी हो गयी है धूप-
खूब रूखा बोलती है
धूल की बोली
धमकती धू-धूकर
बड़बड़ाती बैठती है हॉस्टल की फेंस चढ़।
घर लिखा करती है चिट्ठी एक टुकड़ा छाँह पर
डाक में डाले बिना ही फाड़ती है ऊबकर
आँसूओं में या पसीने में पगी सी, तर-बतर।"[39]

अनामिका अपने गीतों, गजलों और कविता में पर्यावरण के संरक्षण को लेकर गाना चाहती है और उन्हें विश्वास है कि कहीं न कहीं उनका ये काव्य मानव मन को कचोटेगा और मानव विह्वल होकर उनकी बात को स्वीकार कर इस ओर कदम बढ़ायेगें - रचनाकार हो या कलाकार या शिल्पकार या मूर्तिकार सबकी अन्तश्चेतना ही उसकी शैली को प्रखर बनाती हैं। अनामिका की कविता 'ऐसे झाँकी घूप' में उनके संवेदनात्मक स्वरूप को देखा जा सकता है-

''शिशु कोई रोता-रोता ज्यों सहसा ही मुस्का दे,

मृत-शंकित-सी तितली कोई पंख तनिक सिहरा दे,

निन्दा-निपुण मित्र की आँखें स्तुतियाँ बरसा दे,

सदा मौन मुख दादी माँ ज्यों मस्त कजरियाँ गा दे,

अपने हाथों लगी पौध में पहली पंखुड़ी फूटे,

पतझड़ की टहनी का अन्तिम पीला पत्ता टूटे।

बहुत दिनों के बाद सँवर माँ बिन्दी बड़ी लगाये,

बहुत गिड़गिड़ाने पर जैसे भीख रोटी पाये,

कालकोठरी के मेघों की ऐसी झाँकी धूप

अपने मानों दूर गाँव से पैदल मिलने आये।"[40]

अनामिका की प्राकृतिक चेतना ने उनकी रचनाओं में प्राण डाल दिये और उनके काव्य ने एक मंत्र का रूप ले लिया। अनामिका को प्रकृति से इतना अधिक प्रेम है कि वह धूप और शाम को अपने जीवन का एक हिस्सा मानती हैं और 'शाम' नामक कविता में कहती है-

"ढल गयी है शाम टेबल पर

साँस ठण्डी छोड़कर, कार्डिगन ढीली कर

कान से सूखे हुए पत्ते उतार

टूटकर अँगड़ाई लेती है कनेर।

धूप की साड़ी में सलवट पड़ गयी है।

केतली में खौलता है अँधेरा।

तश्तरी में सैण्डविच बासी पड़ा है-चाँद

हो गयी जो वक्त के दफ्तर में छुट्टी

क्रेश से आसमाँ के

तारे झाँकते हैं।"[41]

अनामिका ने अपनी कविताओं में प्राकृतिक संवेदनाओं को यथा स्थान चित्रित किया है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक संवेदना के अनेक प्रयोग देखने को मिलते है। उन्हीं में से जेठ कविता को यह उदाहरण देखें -

''बिल्कुल ब्रह्माण्ड पर

चुल्लू-भर तेल-तेल-सी चिप-चिप धूप थाप

बरगद की जटा या कि नानी की लट रूखी

उँगली से सुलझाये जाती है हवा

दूर वहाँ खिड़की के पार!

मनिहारिन-सी

मरकर पालथी

जेठ की दुपहरी

वह लगाती है बाजार

रोल-गोल्ड की पत्तियाँ-डालियाँ

बिन्दियाँ, चूडियाँ फैन्सी

बेचती।"[42]

3. मानवीय संवेदना-

साहित्य में काव्य ही एक साधन है जिसमें मानवीय संवेदना को स्थान दिया गया है। हमारे अन्तस में उठने वाली ललित तरंगें मानवीय संवेदना का ही पोषण करती हैं। कवि कर्म से दुखी कवि पत्नी ने जब उग्र रूप धारण किया तो कवि ने इस

संवेदना को अपनी कविता की विषय-वस्तु बनाकर मार्मिक रूप प्रदान कर दिया। अनामिका के काव्य में वात्सल्य प्रेम प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है।

''माँ हूँ मैं,

मेरे भरोसे ही बीमार पड़ता है चाँद

जाओ, अब दूध पिलाऊँगी मैं

सोओ कि इसे सुलाऊँगी मैं''[43]

यही वात्सल्य संवेदना अनामिका की कविता 'सत्रह बरस की प्रतियोगी परीक्षार्थी में भी देखने को मिलता हैं। माँ सब कुछ सहन कर सकती है किन्तु बच्चे की भूख उससे बर्दाश्त नहीं होती-

''माँ, भूख लगी है।

इस सनातन वाक्य में

एक स्प्रिंग है लगा

कितनी भी हो आलसी माँ,

वह उठ बैठती है,

और फिर कनस्तर खड़कते है।

जैसे खड़कती है सुपली

दीवाली की रात''[44]

आज की पढ़ाई पढ़ाई कम लड़ाई ज्यादा दिखती है। बच्चों के बैग इतने भारी हो गये है कि उन्हें उठाने और रखने में ही उनकी पूरी ऊर्जा समाप्त हो जाती है। अनामिका की होमवर्क कविता कुछ इन्हीं भावों को व्यक्त करती हुई प्रतीत होती है-

''अब मैं थक गया माँ-

अगला होमवर्क तुम्हीं कर दो।

क्या जाने क्या-क्या दे देती है मैडम-

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

रिक्त स्थानों की पूर्ति?"[45]

लोक व्यवहार और कला दोनों में मानवीय सौन्दर्य का अत्यधिक महत्व हैं। मानव का सौन्दर्य बहुत कुछ उपयोगिता पर निर्भर रहता है। मानव सौन्दर्य की दृष्टि से ईश्वरीय सौन्दर्य की छाया और पूर्वजन्म के पुण्य का परिणाम माना जाता हैं। मानव सौन्दर्य तो संसार में महान युद्धों का जनक रहा हैं। अनामिका की बच्चा कविता में मानवीय संवेदना का एक ओर अनुपम दृश्य देखें-

"घर से बच्चा चला गया है

छूट गई है एक जुराब,

जागी आँखों में छूटा हो

जैसे एक खिलौंना ख्वाब।"[46]

4. आँचलिक संवेदना

आँचलिक शब्द का अर्थ- वह प्रदेश जिसकी बोली, भाषा, संस्कृति, उत्सव, विवाह आदि मांगलिक कार्यों से संबंधित लोक-गीत, धर्म, किंवदन्तियाँ एवं समस्याएं अर्थात् सम्पूर्ण जीवन अपनी विशिष्टता रखता हो, अंचल कहलाता हैं। अंचल शब्द से आँचलिक शब्द बना है। आँचलिकता को अनेक विद्वानों ने पृथक-पृथक रूप से परिभाषित किया है।

डॉ. आदर्श सक्सेना के मतानुसार- "एक जैसी बोली, व्यवहार, रहन-सहन, संस्कार, लोक-कथाओं, लोक गीतों एवं समस्याओं से ग्रस्त एक सी जीवन व्यवस्था से

बंधे, पर्वत श्रृंखला के सहारे, नदी-कूल पर स्थित, सागर तट पर फैले ग्रामों को अंचल की संज्ञा से अभिहित किया हैं।'[47]

डॉ कांति वर्मा के मतानुसार- ''आंचलिक शब्द का तात्विक अर्थ यही नहीं है कि केवल ग्रामीण कथाएं ही इस क्षेत्र में आयें बल्कि किसी छोटे शहर की विशिष्टता को उभारने वाला साहित्य भी आंचलिकता की सीमा में आ जाता है।"[48]

अनामिका आंचलिक प्रियता की कवयित्री है। सहजता और स्वाभाविकता उनके काव्य का विशिष्ट गुण हैं। नदी नामक कविता में उनके हृदय की मधुरता, कोमलता, सरलता व संगीतात्मकता साकार हो उठी हैं-

''दूर किसी घर में कुछ गिरा है

पीतल की गगरी-सा

लुढ़कती चली आयी है टनटनाहट

सूनी दोपहरी में

कई देहलियाँ लाँघकर

आवाज की एक नदी वह गयी है

इस घर से उस घर तक।"[49]

इसी प्रकार के कुछ भाव एक और अन्य कविता में देखने को मिलते है-

''क्रमश: बड़ी होती जाती

चूड़ियों की झाँझ की तरह

खन-खन-खन, खनन-खनन।"[50]

आँचलिकता स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की बहुचर्चित प्रवृत्ति रही है। वैसे देखा जाय तो कथा साहित्य के लिये यह तत्व उतना ही प्राचीन है जितना की कथा-साहित्य। लेकिन इसकी चर्चा स्वातंत्रोत्तर काल में शुरू हुई और उसके स्वरूप पर

विचार विश्लेषण किया जाने लगा। कहा जाता है कि 'अंचल' से 'आँचलिक' शब्द बना है। जिसे विभिन्न विद्वानों ने पारिभाषित करने का भरसक प्रयास किया है। अनामिका ने 'केरल की एक लोकधुन पर आधारित' कविता में आंचलिक शब्दावली का प्रयोग देखें -

"आरारी अरारिआरोउ…

देखा जी एक तमाशा

बाबी में फूल खिले-अमरतिया, लहरीले।

हुर-हुर, झिरझिर अस्फुट,

जंगल की 'टीवी टुट' बन

मेरे पीछे चली।"[51]

राजेन्द्र अवस्थी आँचलिकता के बारे में लिखते है- "जिस कथा वृत्ति में किसी विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र चित्रण वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, धर्म, जीवन, समाज, संस्कृति और आर्थिक तथा राजनीतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आये, वह आँचलिक कृति होती है।"[52] ग्राम गीतों की धुन, वर्णों का प्रयोग, संयुक्त दीर्घ स्वरों की ध्वनियों से युक्त एक और कविता देखें -

"ग्यारहवीं शती के

गिरिजाघरों में

खेले जाने वाले

मोरैलिटि प्ले के उद्भावकों ।

यह मेरे जीवन का पहला है

मोरैलिटि प्ले।

पहला दृष्टान्त-काव्य,

ये हठीली एलिगरी।"[53]

इसी प्रकार के कुछ ध्वन्यात्मक शब्दों से सजी एक और कविता के कुछ अंश देखें -

''गुटरूम गुटूर-गुटूर, झिमिर,

झिमिर, फफक-फफककर

ठठा-ठठाकर झीना-झीना।"[54]

5. स्त्री संवेदना-

आज की आधुनिक नारी अब अबला नहीं रही। वह सबला हो चुकी है परन्तु आज भी नारी का शोषण हो रहा है। भारत में नारी शोषण प्राचीन काल से चला आ रहा है। यह आज की समस्या नहीं है। वर्षों से चली आ रही परम्परा है। कवयित्री का मन भावुक होता है उसका जीवन अपनी निजी भावनाओं, व्यक्तिगत पलों में निहित तो रहता ही हैं किन्तु उसकी भावनायें औरों के जीवन से भी जुड़ी होती हैं।

स्त्री की परिभाषा :

'स्त्री शब्द किसी आयु की मानव नारी का द्योतक है।' भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 10 में प्रयुक्त पदावली 'किसी भी आयु का' से आशय यह है कि किसी भी आयु की बालिका को स्त्री माना जायेगा। अत: इस धारा के अधीन पुरुष को स्त्री के विलोम के रूप में प्रयुक्त किया गया है। तात्पर्य यह है कि इस धारा के अनुसार संहिता के प्रयोग के लिये किसी बालिका के जन्म लेते ही उसे स्त्री माना जायेगा क्योंकि यह धारा लिंग को परिभाषित करती है जो केवल पुरुष अथवा स्त्री ही हो सकते है।[55]

आधुनिक काल के आते-आते स्त्री चिन्तन की दिशाएँ बदलती नजर आने लगी एक क्रान्तिकारी परिवर्तन दिखायी देने लगा। यह कदम स्त्री जागरण के रूप में देखा जाने लगा। आधुनिक काल की प्रगति तक पहुँचने के लिए नारी को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। आधुनिक काल में स्त्री शिक्षा, स्त्री

सशक्तिकरण, स्त्री मुक्ति आदि विषय स्त्री जागरण के केन्द्र में खड़े देखे जा सकते है। स्त्री गृहस्थी के कार्यों में उलझी रहती है इसका अर्थ यह नहीं की उनमें संवेदनात्मकता नहीं होती है-

"अभी मुझे घर की उतरनों का
अनुवाद करना होगा
जल की भाषा में
फिर जूठी प्लेटों को
किसी श्वेत पुष्प की पंखुड़ियों में
अनुवाद करूँगी मैं।"[56]

एक स्त्री की घर के बाहर की छवि को सहजता ने नहीं सोचा जा सकता है। घर और स्त्री के संबंध को प्राकृतिक और स्वाभाविक मान लिया गया है। इसी स्वाभाविकता को अनामिका ने अपनी कविता में स्पष्ट स्वर प्रदान करते हुए कहा है-

"जिनका कोई घर नहीं होता-
उनकी होती है भला कौन सी जगह?
कौन-सी जगह होती है ऐसी
जो छूट जाने पर
औरत हो जाती है
कटे हुए नाखूनों
कंघी में फँसकर बाहर आए केशों-सी
एकदम से बहुरा दी जाने वाली?"[57]

समस्यात्मक चित्रण-

नारी जीवन अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहता है। इन समस्याओं को एक स्त्री भली भांति समझ सकती है। किन्तु पुरुष को समझने में समय लग सकता है। भारतीय समाज में अनेक प्रकार की समस्याएं है। घरेलू हिंसा उनमें से एक है। दहेज प्रथा, बेराजगारी, अशिक्षा के कारण हिंसा की शिकार स्त्रियाँ ही होती है। बहन, बेटी और पत्नी के रूप में उन्हें हिंसा का शिकार होना पड़ता है। भारतीय साहित्य आज हिंसा के अवसाद से भरा पड़ा है।

घरेलू हिंसा-

वर्तमान समय में दहेज प्रथा स्त्रियों के लिए सबसे बड़ी समस्या के रूप में विद्यमान है। दहेज के अभाव में स्त्रियों के गर्भ में ही लिंग परीक्षण कराकर भ्रूण हत्या जैसे निन्दनीय अत्याचार किये जा रहे हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में कितने व्यापक पैमाने पर लिंग हिंसा व्याप्त है तथा इसके साथ ही साथ पति या उसके परिजनों द्वारा पत्नी को मारना-पीटना, लैंगिक दुर्व्यवहार करना, विधवाओं तथा वृद्ध महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करना घरेलू हिंसा है, सच्चाई तो यह है कि भारत में स्त्रियां न घर में सुरक्षित है न घर के बाहर। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के आंकड़े यह बताते है कि उनके विरुद्ध यौन हिंसा एवं घरेलू हिंसा अधिकांश: उनके अपने रिश्तेदारों एवं परिचितों द्वारा किया जाता हैं।[58] अनामिका का मानना है कि प्राचीन काल से ही नारी को हिंसा का शिकार होना पड़ा है।

अनामिका ने 'गालियाँ सुन लेने का शील कविता में उन घरेलू स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए लिखती हैं-

"धीरललित, धीर प्रशांत,

धीरोद्धत धीरोदात्त

चर तरह के नायक

बतला गए है न भरत मुनि

नाट्यशास्त्र में-

इन सबका एल.सी.एम. निकाले तो

एक धीर ही नजर आएगा

उभयनिष्ठ, उसका पहाड़ा चढ़े चलिए

तो जीवन में सब कुछ ठीक ही रहेगा।

नायक बना लेने की साध अगर हो मन में

धीरज से विकसित करना होगा

गालियाँ सुनने का शील

धोबी हो रामराज्य के या कि शिशुपाल

'बिन साबुन, पानी बिना' निर्मल वे रखेगें

आपका सुभाय।

एक सीमा पार कर लेने के बाद मन में आएगा-

एक दम ही उठा ले गांडीव या चक्र जैसा कुछ,

पर उसको कानून हाथ में लिया जाना

कहा जाएगा यह याद आते ही

आप जाएँगी थमक,

क्योंकि कानून

ट्रैफिक में फँसे अंधे, अनाथ बच्चे की तरह

दिखलाई देता है उनको ही

जो इसको चाहते है देखना।

भागते भूत की लंगोट भली,

दुधारू गाय की लताड़ भली।"[59]

"समाज का एक प्रमुख व विशिष्ट अंग नारी है नारी के बिना समाज अधूरा है नर और नारी एक दूसरे के पूरक है इन दोनों के सम्मिलन से ही परिवार बनता है परिवार मिलकर समाज बनता है तो आइये हम देखें कि सभ्यता के शुरू से नारी की क्या स्थिति रही। नारी जो उस सृष्टि की अमूल रचना है जिसके सहयोग से सृष्टिक्रम यथावत चलता है।"[60] "उत्पीड़न, प्रताड़नाओं और अवहेलनाओं के कंटीले तारों से बींधता स्त्री जीवन का यह अध्याय तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक शोषणकर्ता अपनी संवेदनहीनता को त्याग न दें। हिंसा के पीछे मूल कारण है अंहकार जो हर कीमत पर स्त्री को अपने वर्चस्व में रखना चाहता है और इसका सीधा सा रास्ता ही महिलाओं पर चोट करना है। ऐसा नहीं कि सभी पुरुष शोषणकर्ता है क्योंकि अगर ऐसा होता तो उच्च पदों पर आसीन महिलायें नहीं होती। क्या विश्व का कोई भी पुरुष पूर्ण विश्वास से यह कह सकता है कि स्त्री के ममत्व और स्नेह के बिना अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया।"[61] गालियाँ सुनने का शील कविता में वे कहती है कि स्त्री बिना विरोध करें, सिर झुकाकर गालियाँ सुनती रहती है और किसी प्रकार का कोई जवाब नहीं देती है-

"वैसे तो रहती है शाश्वत डायटिंग पर स्त्रियाँ
पर गालियाँ खाने में उनका नहीं है जवाब।
गोलगप्पों की तरह गपागप
गाल फुलाकर, सिर झुकाकर,
घोटकर हुई थूक
नाक-आँख से पानी
इमली का छलकाती
खाये ही जाती है
शाम से सुबह तक

खूब मिर्चीदार गालियाँ"[62]

महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार एवं हिंसा व अपराधों को रोकने के लिये भारत सरकार ने अनेकों कानून एवं अधिकार बनाये लेकिन दुर्भाग्य की बात हैं कि महिलायें इसका लाभ तक नहीं ले पाती क्योंकि अशिक्षा एवं गरीबी के चलते कई महिलाओं को तो अपने अधिकार तक नहीं पता होते जिनको जानकारी भी होती हैं तो उनको पाने के लिये लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ती है।

घरेलू हिंसा के कारण निम्न है-

1. **बेरोजगारी-** भारत में बेरोजगारी भी घरेलू हिंसा का एक कारण है। ज्यादातर लोगों के पास काम न होने के कारण वह दिन भर घर पर बैठे रहते है और अपनी पत्नियों से लड़ते रहते है।

2. **अशिक्षा-** घरेलू हिंसा का एक कारण अशिक्षा भी है।

3. **दहेज प्रथा-** दहेज प्रथा आज समाज में सुरसा जैसी फैलती जा रही है। यही कारण है कि आज घरेलू हिंसा के प्रमुख कारणों में यह भी हैं। पहले समाज में दहेज अपनी पुत्री को खुशी से दिया जाता था किन्तु बदलते परिवेश ने आज इसे समाज ने स्टेटस के रूप में अपनाकर वाह-वाही लूटने का अवसर मान लिया है। वर्तमान समय में दहेज प्रथा स्त्रियों के लिए सबसे बडी समस्या के रूप में विद्यमान हैं।

हिंसा एक प्रकार का अमानवीय व्यवहार है जो बिना कारण ही किसी के ऊपर थोप दिया जाता है। हिंसा तथा घरेलू हिंसा के कारण सिर्फ व्यक्ति ही नहीं बल्कि समस्त राज्य व राष्ट्र भी प्रभावित होता है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति सिर्फ पुरूषों द्वारा ही नहीं बल्कि स्त्री के शिक्षा, सम्मान व प्रगति द्वारा भी होती हैं। इसलिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह स्त्रियों के प्रति अनादर, अपमान, दुर्व्यवहार आदि भावनाओं का त्याग करके उनको सम्मान प्रदान करें। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर वैचारिक परिवर्तन लाना होगा तभी स्त्रियों के प्रति बलात्कार, हत्या, दहेज,

भ्रूण हत्या, तेजाबी हत्या, यौन-उत्पीड़न इत्यादि समस्याओं का समाधान हो पायेगा, क्योंकि सृष्टि के संचालन में स्त्रियों की पुरूषों के साथ महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं, जिसके अभाव में सृष्टि का संचालन असम्भव है। इसलिए व्यक्ति को स्त्रियों को पुरूषों के समान समानता का अधिकार देने के लिए अग्रसर होना चाहिए जिससे समाज का स्वरूप संतुलित हो सके और आने वाले भविष्य में सभ्य समाज की स्थापना हो सके।[63] अनामिका कहती है कि नारी को सदैव थप्पड़, लात, घूँसे मिलते ही रहे हैं-

''ऊपर से थप्पड़, घूँसे डाँट, ताने-

बोनस में

बाई बन, गेट वन फ्री

और ज्यादातर तो सैम्पल में मुफ्तद बँटी

बस यों ही

जैसे की फाइव स्टार के संग पेप्सी

वैसे ही गाली के संग घूँसे

क्या फर्क पड़ता है जी

बचपन से यही सीखते आए है

फूलों के संग होते हैं काँटे

दुधारू गाय की लताड़ भली

रोटी जो देता है

गोलगप्पे भी खिला देगा कभी-कभी

तो क्या है न जी

है न जी?''[64]

स्त्री ममता, दया, क्षमा से भरी होती हैं किन्तु उसके व्यक्तिगत जीवन में उसे पिटना एक आम बात सी मानी जाती है। भारतीय फिल्मों में भी नारी के दारुण स्वरूप को ही दर्शाया गया है। आज की नारी जहाँ आसमान की ऊँचाईयों तक पहुँच चुकी है, फिर भी उसे करुण क्रन्दन करना ही पड़ता है-

''पीठ नीली

चेहरा पीला

लाल आँखें और

जख्म हरे

कुदरत के सब रंगों की बोतल

उलट-पलट जाती है मुझ पर

उनके आते ही

इसको ही कहते है क्या-

हींग लगे, न फिटकरी

और रंग चोखा।''[65]

शहरी तथा कामकाजी महिलाओं की भी अपनी ही समस्यायें होती है। भारतीय परिवेश में भी स्थितियाँ बदल गयी है। इसी विषय पर अनामिका ने कहा है कि-

''अब बस उठो, चलो जैसी हो चल दो

दुनिया में एक यही काम है जरूरी

यह चल पड़ना

अरसे से जोड़ रही है

लुकाठियाँ

लाठियाँ

टूटी पीठों पर बेमतलब जो।"[66]

कामकाजी स्त्रियाँ कभी भी शांति ने नहीं बैठती। उनके ऑफिस के काम खत्म होते है तो घर के शुरू हो जाते हैं। सुबह से शाम तक ऑफिस में काम करती है। फिर घर आकर घर का काम करती है। अनामिका की औरतें नामक कविता देखें -

''काम-काज वाली तमाम औरतें

सेती है बस बस में

गोदी में जनपथ के सस्ते-सस्ते स्वेटर

फाइलें, किताबें, बच्चें

और झोले में सुपर मार्केट के वे पैकेट

लिए-दिये गिरती-पड़ती

धूप में जरा झुलसी

फेयर एण्ड लवली में रची बसी।"[67]

स्त्री का जीवन चूल्हा, चौका, बर्तन, मांजना आदि में ही व्यतीत हो जाता है। उसे बाहर की दुनिया का पता नहीं चलता है कि समाज में क्या घट रहा है। अनामिका की स्त्री कविता में यही भाव निहित है-

''वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी

ज्वालामुखी बेलते है पहाड़

भूचाल बेलते है घर।

सन्नाटे शब्द बेलते है, भाटे समुन्दर।

रोज सुबह सूरज में

एक नया उचकुन लगाकर

एक नयी धाह फेंककर

वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।"[68]

अनामिका ने पृथ्वी को भी एक लोई के समान समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है-

"पृथ्वी जो खुद एक लोई है

सूरज के हाथों में

रख दी गयी है

पूरी-की-पूरी ही सामने

कि लो इसे बेलो, पकाओ,

जैसे मधुमक्खियाँ अपने पंखों की छाँह में

पकाती है शहद।

सारा शहर चुप है,

धुल चुके है सारे चौकों के बर्तन।

बुझ चुकी है आखिरी चूल्हे की राख भी,

और वह

अपने ही वजूद की आँच के आगे

औचक हड़बड़ी में

खुद को ही सानती,

खुद को ही गूंधती हुई बार-बार

खुश है कि रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।"[69]

परिस्थिति चित्रण-

काव्य का माध्यम शब्द (भाषा) होता है। कवयित्री संप्रेष्य भाव, विचार, अनुभव, संवेदना एवं संस्कार के अनुरूप शब्दों का अनुसंधान या चयन करती है। जिस समाज या जाति में जिन विचारों, भावों, व्यवहारों, संस्थाओं तथा पदार्थों का अस्तित्व नहीं होता, उस समाज की भाषा में उनसे सम्बद्ध शब्दावली का अभाव होता हैं। भाषा संस्कृति और साहित्य का वाहक हैं। शब्द का भावाभाव सम्बन्धित प्रवृत्ति, संस्कार, विचार, भाव, भावानुभव एवं वस्तु आदि के भाव-अभाव, अस्तित्व-अनस्तित्व का सूचक होता हैं। मानव समाज में अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ बनती और बिगड़ती हैं। पुरुष समाज द्वारा स्त्री का सदैव दमन तथा मर्दन होता रहा है। किन्तु वर्तमान परिवेश में उसकी इस स्थिति में सुधार आया है। आज नारी के अन्दर विद्रोह की भावना ने जन्म ले लिया है। अनामिका की कविताओं में ऐसी परिस्थितियों का वर्णन देखने को मिलता है, जहाँ वह उससे बाहर निकलना चाहती है-

''जैसे कि मजदूरनी

तोड़ती है पत्थर

मैंने तोड़ा खुद को

कूट-कूटकर!

धूल-धूल कंकड़ी-कंकड़ी हुई।

उड़ी तो चुभी आँखों में किरकिरी सी

गिरी धँसी तो थोड़ी नींव में पड़ी

थोड़ी सड़कवाली गिट्टी में

पुल के गारे में थोड़ी सी

थोड़ी सी घर की दीवारों में।"[70]

आधुनिक स्त्रियाँ पुरुष समाज द्वारा पैरों में पहनायी गई बेड़ियों को तोड़कर बाहर आ रही है। उनके अन्दर भी आत्मविश्वास का जन्म हो गया है। अनामिका ने इसी के आधार पर कहा है कि-

''एक चारपाई के पाये के नीचे

मुझको दबाकर

बढ़ाया गया उसका कद

कंकड़िया मारके जगाने में भी

कभी-कभी ली गई मेरी मदद्

एक गुलेल पर सधी

लब्बोलुबादा ये है कि

मैंने तो 'मैं' की

चौहद्दी ही लाँघ ली

तोड़-तोड़कर खुद को

घुल मिल गई

आवारा बच्चों की आमचोर टोली में

बल्लियों उछलती रही उनकी झोली में।"[71]

नारी के साथ जुड़ा उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व, उसका अस्तित्व, उसकी क्षमता, उसकी अस्मिता को लेकर अब नारी और सचेत हुई, पुरातन चार दीवारी को तोड़ा और बाह्य जगत के साथ नाता जोड़ने की कोशिश की है। पुरूष प्रधान समाज में उसके इस निर्णय में यदा-कदा कई व्यवधान सामने आते रहते है, किन्तु स्त्री ने अपने सामने आने वाली मुश्किलों का डटकर सामना करना सीख लिया है। आज की नारी पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है। वह किसी भी स्थान में पुरुष से पीछे नहीं है।

यथार्थ चित्रण-

समाज के उत्पीड़ित वर्गों, खासकर नारी जाति के प्रति अनामिका के काव्य में गहरी करुणा है, लेकिन उसके उठ-खड़े होने पर उनका अटूट विश्वास भी है। मनुष्य के ढोंग, उसके स्वार्थ और अमानवीय आचरण की भी वे निर्मम आलोचनात्मक साधना करती है। जीवन में आने वाली गैर यथार्थवादी ताकतों से निपटने के लिये उन्होंने अपने अनुभवों को उजागर किया हैं। इससे उनकी रचना का यथार्थ पाठक के लिये गहरा, अधिक कलात्मक और अधिक विश्वसनीय हो उठता हैं। वे सहज विचारों की धनी हैं। कोई भी बात उनकी घूमा-फिरा कर बताने की नहीं होती।

अनामिका यथार्थवाद की खुली पुस्तक के समान है, वे अपनी पैनी नजर से समाज नारी की कठिनाईयों और मुसीबतों से निरंतर समाज को अवगत कराती रही है। नारी समाज में होने वाले परिवर्तनों से भी उन्होंने कुछ सीखा है और उसकी कमियों को दूर करने की कोशिश की है। उन्होंने भले ही कविता के तीखे तीर चलाये हो परन्तु वे नारी समाज के कमजोर वर्गों तथा नारी जाति के अश्रुजनित व वेगवान विचारों की रण भेदी करने वाली कवयित्री भी है। उनके यथार्थ का स्वरूप चिंतनशील है। वे समाज को इस पर सोचने पर भी मजबूर करती है।

यथार्थवाद का स्वरूप :-

यथार्थवाद के माध्यम से अनामिका ने मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलूओं को स्पष्ट किया हैं। समाज के दैनिक जीवन के समग्र पहलूओं का अनुशीलन किया हैं। उनका यथार्थवाद सामाजिक व आर्थिक हैं, कहीं-कहीं उन्होंने राजनीतिक यथार्थ की भी चर्चा की है। वे प्राय: सत्य सेवा की ओर उन्मुख रहे और समाज सेवा की बात करते रहे, वे जनता के पक्षधर ही रहे। ‘‘एक ओर देश के शासकों द्वारा उसे उन्नति की ओर ले जाने की बात की जाती है तो दूसरी तरफ उन्हीं सत्ताधीशों में समाज को गर्त में ले जाने वाले षड़यंत्रकारी मौजूद हैं। कथनी और करनी का यही फर्क अन्तर्विरोधों को जन्म देता हैं।‘‘[72] अनामिका ने स्वयंसिद्धा के रूप में स्वयं को एक श्रमिक,

अनाश्रित व गरीब मजदूर के रूप में ही देखा। जो मुक्ति की तलाश करती हुई भटकती फिरती है-

"वह इधर थी, उधर थी
इसके पास, उसके पास
तो मेरे पास क्यों नहीं थी
मेरी मुक्ति।"[73]

नैतिकतावादी यथार्थ :-

अनामिका के काव्य में नैतिकतावादी लेखन भी देखने को मिला है। अनामिका की रचनाओं में रूढियों तथा परम्पराओं में व्याप्त सामाजिक बुराईयों का खंडन किया गया है। किन्तु उसके साथ समाज के नैतिक मापदंड़ों को आधार मानकर उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक मूल्यों तथा घटनाओं का विवेचन किया है। उनका प्रयास सदैव ही नैतिक मूल्यों की स्थापना की ओर रहा है। अनामिका जी मानवीय जीवन मूल्यों की प्रबल पक्षधर हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों को सदैव ही अपने प्रयत्नों से दूर करने का प्रयास किया हैं। इसी आधार पर सामाजिक मूल्यों को समाज की भूमि मानकर ही इन मूल्यों को बरकरार बनाये रखने में सहायता पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। अनामिका परिवर्तन के प्रति संशकित भी नजर आती है, तभी तो वे कहती है-

"मेरा क्या होना है, कुछ नहीं होगा-
अग्नि सम्यक वों का कुछ कभी नहीं होता-
जैसी की तैसी रहूँगी-
पानी और मिट्टी और आग
दरवाजों के भीतर, दरवाजों के पार।"[74]

अनामिका की नैतिकता धर्म, जाति व सम्प्रदाय विशेष के प्रति नहीं बल्कि नारी जाति के प्रति हैं। बदलते हुए नैतिक मूल्यों के प्रति अनामिका जी ने चिंता व्यक्त की है। जीवन मूल्यों, शाश्वत मूल्यों का ह्रास होता जा रहा हैं। ऐसी स्थिति में नैतिक मूल्यों की रक्षा करना असंभव प्राय: लग रहा हैं। अनामिका ने अपनी रचनाओं में नैतिकतावादी यथार्थ की सफल प्रस्तुति की हैं। बदलते हुए सामाजिक मूल्यों एवं कमरतोड़ मंहगाई बर्दाश्त करने वाले आदमी के प्रति करूणा व्यक्त करने वाली अनामिका ने नैतिकतावादी यथार्थ को स्थापित करने का प्रयास किया हैं। उनका मानना है कि नैतिक मूल्यों से हमारी सभ्यता व संस्कृति के स्तम्भ मजबूत होते हैं जो कि नारी समाज का आधार है। नारी अपनी समझौतावादी मानसिकता के कारण और संस्कारवश सब कुछ सहती चली जाती है। पतिव्रता कविता में अनामिका के ये भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते प्रतीत होते है-

"काम बहुत रहता है इनको
ठीक नहीं रहती तबीयत भी।
चिल्लाएँ, झिड़कें या पीटें ही बेचारे।
धीरे-धीरे मैं भी हो ही गयी पालतू।
बीमार से रगड़ा क्या, झगड़ा क्या,
मैंने साध ली क्षमा।"[75]

अनामिका ने सामाजिक जीवन के संक्षिप्त चित्रों को भी अत्यंत चतुराई के साथ परिलक्षित किया हैं। उन्होंने सृजन कार्य के दौरान नारी के संक्रमण काल से गुजरी हुई स्थिति का वर्णन किया है। अत: समाज की विसंगतियों का उनके साहित्य में आना स्वाभाविक ही था। सामाजिक जीवन में उत्पन्न होने वाली विसंगतियों को अनामिका ने अच्छी तरह से महसूस किया हैं और उसके कारणों का विवेचन भी अपने काव्य में किया है। समाज-चिंतन ने जहाँ एक ओर उनके विचारों को प्रभावित किया है, वहीं मनुष्य को विकास की ओर अग्रसर होने पर भी बल दिया है।

अनामिका की अन्तर्दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं भेदक है। उनकी खोजी निगाहों से कोई भी विसंगति, विषमता एवं बुराई नहीं छिपती है। उन्होंने यथार्थता का बड़े ही गहन तरीके एवं उसकी गहराई तक जाने का प्रयास किया है। उनकी खोज-बीन नारी समाज में व्याप्त बारीक से बारीक व कठिन से कठिन समस्याओं पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। जो उनके रचना कौशल का प्रतीक बन गई है। उनके अनुभव, अन्तर्दृष्टि, अवलोकन क्षमता, अभिव्यक्ति क्षमता अधिक श्रेष्ठ हैं। जो कम ही रचनाकारों में देखने को मिलती हैं। ऐसी ही एक कविता देखें -

''मुझे मिला थोड़ा सा एकान्त
पहले तो मैंने सीटी बजाई,
फिर खेली खुद से अन्त्याक्षरी
सब पुराने गानों की
और जाना पहली बार
चित भी मेरी, पट भी मेरी का
है उल्लास।"[76]

अभिव्यक्ति पक्ष-

साहित्य का निर्माण केवल कल्पना के बलबूते पर नहीं होता। स्वानुभूति के द्वारा लिखा गया साहित्य निश्चित रूप से श्रेष्ठ होता है। पाठक वर्ग के समक्ष जीता जागता चित्र प्रस्तुत करने वाला ही सफल साहित्यकार कहलाता है। समाज की मानसिकता का सूक्ष्मावलोकन कर साहित्यकार समाज से ही कुछ ऐसे पत्रों का चयन करता है, जिनके माध्यम से समाज का चित्र समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में सहायता होती है। समाज को एक नई दृष्टि देने का तथा सामाजिक विसंगतियों को उजागर करने में इस प्रकार का साहित्य सहायक सिद्ध होता है। हम उसी साहित्य को

श्रेष्ठ मानते है जो समाज की चेतना को जागृत करने में उपयोगी होता है। आज कई प्रकार की साहित्यिक विधाओं का प्रचलन जारी हैं। हर एक विधा की अपनी अपनी विशेषता होती है। स्त्री विमर्श में स्त्री भाषा का होना अनिवार्य अंग है। अनामिका कहती है कि-

''सुनो हमें अनहद की तरह

और समझो जैसे समझी जाती है

नयी नयी सीखी हुई भाषा।"[77]

युग परिवर्तन के साथ युग की मान्यतायें बदलती हैं, नई परिभाषाएँ बनती हैं, और नये आदर्श प्रस्तुत किये जाते हैं। जन जीवन का बाह्य और अन्तर दशाओं में, उसके जीवन दर्शन में, कार्य प्रणाली में तथा परिणाम में भी परिवर्तन हो जाता हैं, यह परिवर्तन एक प्रकार का निखार है, गति का चित्र है, प्रगति का पथ है। अत: जब परिवर्तन प्रस्तुत होता है, तब विकासशील शक्तियाँ उसका स्वागत करती हैं और रूढ़िवादी शक्तियाँ जो विकास को (अपना) विनाश मानती हैं, उसका विरोध करती हैं। साहित्य से धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक विचारों एवं भावों, पारिवारिक सम्बन्धों तथा देशी-विदेशी संस्थाओं का इतिहास सहजता से प्राप्त हो जाता हैं। कवि-मानस पर समाज के विचारों और भावों आदि के जो संस्कार अंकित हो जाते हैं, वे उसकी कृति में किसी न किसी रूप में दिखाई देते हैं। अनामिका ने सामान्य से सामान्य प्रसंगों की अभिव्यक्ति और स्त्री मुक्ति की चेतना का सूचक हैं-

''औरतों को डर नहीं लगता

कुछ भी कह जाने में

उनको नहीं होती शर्मिन्दगी

मानने में

कि उनमें

पानी है, मिट्टी भी।"[78]

बिना भाषा के अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। मनुष्य के लिए वाणी ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। रचनाकार इसके माध्यम से अपने मनोगत भावों को व्यक्त करके सरस पाठकों के मन को आन्दोलित एवं प्रभावित करता हैं।

प्रतीक और बिम्ब योजना-

अनामिका की रचनाधर्मिता के कौशल को नये प्रतीक, नये बिम्बों के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं-

"द्रौपदी की साड़ी हो जाती है

बातें उनकी?

चिट्ठी लिखती हुई औरत

पी.सी. सरकार का जादू है

औरत को मिला है ये वरदान

कि वह कहीं भी बैठी बैठी

हो सकती है अन्तर्धान।"[79]

रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान, आचार-व्यवहार में संस्कृति काव्य में झलकती रहती है। काव्य में इन सभी का वर्णन होता है, अतएव वह सांस्कृतिकोत्थान का द्योतक सहजत: हो जाता हैं। काव्य का माध्यम शब्द (भाषा) होता है। अनामिका ने प्रतीकों के माध्यम से अपनी कविता में चार चांद लगा दिये हैं-

"चल रहा है एक सिलसिला

और एक आदि स्त्री दूसरी उतनी ही

पुरातन सखी के

छितराये हुए केशों से

चुन रही है जुएँ

सितारें और चमकुल।"[80]

साहित्य का जीवन से अटूट सम्बन्ध होता है एवं साहित्य समाज का दर्पण होता है। दर्पण का काम यह होता है कि वह जैसे का तैसा, जो जैसा है वह वैसा ही दिखता है। समाज में जो घट रहा होता है उसको वैसा ही साहित्य धारण कर लेता है। कालावधि के बाद पाठक या स्रोता जो भी हो उसको बीते समय का यथावत चित्र प्रस्तुत कर देती है। परिवर्तन सृष्टि का क्रम। जिस प्रकार वृक्षों से पीले पत्ते गिर जाते हैं तथा कुछ समय बाद उन पर पुन: हरे पत्ते आ जाते हैं ठीक उसी प्रकार आत्मा भी अपने पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेती है। अनामिका की कविताएँ भारतीय परिवेश में पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों में नारी की दशा को उद्घाटित करती है, तथा भारतीय और पाश्चात्य समस्याओं के बीच डोलती आधुनिक नारी की स्थिति को भी कहीं-कहीं उजागर करती हैं। अनामिका की विशिष्टता यही है कि वह खुली आँख से सामाजिक दृश्यों का सामना करती हैं लेकिन वे दृश्य उनके निजी आभ्यंतर सन्दर्भ में ढलकर आते है। जिस अर्थ में व्यक्तिगत ही राजनीतिक होता है, उसी अर्थ में अनामिका का काव्य संसार व्यक्तिगत ही सामाजिक है।

मनुष्य जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक व्यवस्था को स्थापित व विकसित किया जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत नियम, नीतियाँ, आदर्श, धारणाएँ आदि सभ्यता और संस्कृति का रूप धारण कर लेती हैं। साहित्य जीवन सापेक्ष है। वर्तमान जीवन के आधुनिक परिवेश की मानसिकता आज के साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है। साहित्य की सभी विधाओं में यही आधुनिकता बोध अक्षरश: उभारा जा रहा है। विशेषत: कथा साहित्य सम्पूर्ण जीवन की समीक्षा करता जान पड़ता है। परिस्थितियाँ पुरुष की तुलना में स्त्री को अधिक प्रभावित करती है। शायद इसीलिए स्त्री विमर्श की आवश्कता महसूस हुई है।

निष्कर्ष :-

आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त अनामिका ने साहित्य सृजन गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़, मध्यमवर्गीय विरोधाभासों के तलस्पर्शी अवगाहन, विश्लेषण और समाज की स्थापित, आक्रान्त नैतिक जड़ताओं के प्रति प्रश्नाकूलता आदि लेखकीय विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता हैं। काव्य सृजन, स्त्री होकर यथार्थ परिस्थितियों से साक्षात करना और आधुनिक जीवन शैली के द्वन्द्व और विसंगति के बीच बना जीवन दर्शन उनके साहित्य को नयी पहचान देता हैं। उनके सृजन संसार से साहित्य एक नया मोड़ लेता है। आज की अधिकांश स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी विचारशील होने का दावा करती हुई स्त्री-समाज, स्त्री-स्वतंत्र्य, स्त्री समानता और अधिकारों की लड़ाई लड़ते हुए भी नहीं जानती कि वे अधिकार वस्तुत: क्या हैं, कैसे होने चाहिए, किस रूप में होने चाहिए। स्त्रियों को शिक्षित किए बिना उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना सम्भव नहीं, स्त्रियों को जागृत और सचेत बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 साहित्य सागर (मासिक), सं. कमलकान्त सक्सेना, दिसम्बर, 2010, पृ. 7

2 श्याम सुधा, लक्ष्मी प्रसाद शुक्ल 'वत्स' वत्स प्रकाशन किलेदार कम्पाउण्ड सीपरी बाजार झाँसी, सं. 2001, पृ. 65

3 हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 863

4 नालंदा विशाल शब्द सागर, श्रीनवल जी, पृ. 1385

5 संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, सं. रामचन्द्र वर्मा पृ. 664

6 गणपति चन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबन्ध, पृ. 13

7 आनन्द प्रकाश दीक्षित, हिन्दी साहित्य कोश, पृ. 863

8 अज्ञेय, हिन्दी साहित्य, आधुनिक परिदृश्य, पृ. 17

9 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 43

10 बी.एस. माथुर, सामान्य मनोविज्ञान, पृ. 20

11 एस.एन. शर्मा, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, पृ. 138

12 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 45

13 डॉ. रामस्वरूप खरे, सं. शोधार्णव, अंक अप्रैल-जून 2014, पूर्णांक 32, पृ. 21

14 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 11

15 अनामिका का काव्य, मंजु रुस्तगी, वाणी प्रकाशन, सं. 2015, पृ. 197

16 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 11

17 डॉ. रामस्वरूप खरे, सं. शोधार्णव, अंक अप्रैल-जून 2014, पूर्णांक 32, पृ. 20

18 अनामिका का काव्य, मंजु रुस्तगी, वाणी प्रकाशन, सं. 2015, पृ. 198

19 अनामिका, यक्ष प्रश्न, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 35

20 अनामिका, फर्नीचर, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 19

21 अनामिका, फर्नीचर, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 19

22 अनामिका, तीसरी दुनिया : एक स्त्री का अन्तर्जगत बनाम बहिर्जगत कविता में औरत, पृ. 50

23 मंजु रुस्तगी, अनामिका का काव्य, वाणी प्रकाशन, स. 2015, पृ. 197

24 सं. डॉ प्रवीण कुमार सक्सेना, शोधायन भाग 1, पवनपुत्र पब्लिकेशन शारदा नगर लखनऊ, स. 2010, पृ. 7

25 अनामिका, टूटी-बिखरी और पिटी हुई, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 46

26 अनामिका, पतिव्रता, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 27

27 अनामिका, गृहलक्ष्मी-9, दूब धान, पृ. 93

28 अनामिका, गृहलक्ष्मी-6, दूब धान, पृ. 57

29 अनामिका, कहती हैं औरतें, पृ. 47

30 अनामिका, बेजगह, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 15

31 अनामिका, आदि प्रश्न, अनुष्टुप, पृ. 57

32 अनामिका, मरने की फुर्सत, दूब धान, पृ. 57

33 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 158

34 अनामिका, शीतल एक स्पर्श धूप को, पृ. 06

35 अनामिका, शीतल एक स्पर्श धूप को, पृ. 72

36 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 155

37 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 24
38 अनामिका, दूबधान, पृ. 127
39 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 156
40 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 153
41 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 157
42 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 159
43 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 178
44 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ पृ. 27
45 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ पृ. 123
46 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ पृ. 83
47 डॉ. आदर्श सक्सेना, हिन्दी आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि पृ. 21
48 डॉ. कान्ति वर्मा, स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 184
49 अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 43
50 अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 22
51 अनामिका, कविता में औरत, पृ. 111
52 राजेन्द्र अवस्थी, महुआ आग के जंगल, भूमिका, पृ. 5
53 अनामिका, कविता में औरत, पृ. 111
54 अनामिका, गलत पत्ते की चिट्ठी, पृ. 30
55 भारतीय दण्ड संहिता, धारा 10
56 अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 45
57 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 16
58 करेन्ट जर्नल (जर्नल ऑफ रिसर्च) प्रो. जे.एन. सिंह, अंक 8, अक्टूबर-दिसम्बर 2015, पृ.104
59 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 71
60 शर्मा, प्रेमनारायण एवं अन्य-महिला सशक्तिकरण एवं समग्रविकास, भारत बुक सेन्टर लखनऊ, पृ. 24
61 शोधायन भाग 1, सं. डॉ प्रवीण कुमार सक्सेना, पवनपुत्र पब्लिकेशन शारदा नगर लखनऊ, सं 2010, पृ. 70
62 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 72
63 करंट जर्नल, सं. प्रो. जे.एन. सिंह, अंक 2, न. 8, अक्टूबर-दिसम्बर 2015, पृ. 103-104
64 अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 72
65 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 46
66 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 106
67 अनामिका, समय के शहर में, पृ. 175
68 अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 27
69 अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 27
70 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 4
71 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 42
72 डॉ. मंजुला गुप्ता : 'हिन्दी उपन्यास, समाज और व्यक्ति का द्वंद्व' से उद्धृत
73 अनामिका, मुक्ति, अनुष्टुप, पृ. 88
74 अनामिका, अग्नि, अनुष्टुप, पृ. 8

75 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ पृ. 29
76 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ पृ. 20
77 अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ पृ. 14
78 अनामिका, कविता में औरत, पृ. 40
79 अनामिका, कविता में औरत, पृ. 39
80 अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 49